वेदोंके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय

[संसारमें सर्वत्र सुख-दुःख, हानि-लाभ, जीवन-मरण, दरिद्रता-सम्पन्नता, रुग्णता-स्वस्थता और बुद्धिमत्ता-अबुद्धिमत्ता आदि वैभिन्न्य स्पष्टरूपसे दिखायी पड़ता है, पर यह वैभिन्न्य दृष्ट कारणोंसे ही होना आवश्यक नहीं, कारण कि ऐसे बहुत उदाहरण प्राप्त होते हैं कि एक माता-पिताके एक साथ जन्मे युग्म-बालकोंकी शिक्षा-दीक्षा, लालन-पालन समान होनेपर भी व्यक्तिगत रूपसे उनकी परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। जैसे कोई रुग्ण, कोई स्वस्थ, कोई दरिद्र तो कोई सम्पन्न, कोई अङ्गहीन तो कोई सर्वाङ्गसुन्दर इत्यादि। इन बातोंसे यह स्पष्ट है कि जन्म-जन्मान्तरके धर्माधर्मरूप 'अदृष्ट' ही इन भोगोंका कारण है। जीवनमें हम जो कुछ भी कार्य करते हैं, वे ही हमारे प्रारब्ध बनते हैं। मनुष्य जब जन्म लेता है, तब वह अपना अदृष्ट (प्रारब्ध या भाग्य) साथ लेकर आता है; जिसे वह भोगता है। वेद इन सम्पूर्ण विषयोंका विवेचन प्रस्तुत करते हैं और प्राणिमात्रका कल्याण कैसे हो, इसका मार्ग प्रशस्त करते हुए मनुष्यमात्रके कर्तव्यका निश्चय करते हैं। साथ ही ऐहलौकिक जीवनकी सार्थकताके लिये सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देते हैं। इसीलिये वेदोंके प्रतिपाद्य विषयोंमें मनुष्यकी दिनचर्या, जीवनचर्या, सामान्यधर्म, विशेषधर्म, वर्णाश्रमधर्म, संस्कार, आचार (सदाचार, शौचाचार), विचार, यम-नियम, दान, श्राद्ध-तर्पण, पञ्चमहायज्ञ, स्वाध्याय, सत्संग, अतिथि-सेवा, देवोपासना, संध्या-वन्दन, गायत्री-जप, यज्ञ, व्रतोपवास, इष्टापूर्त, शुद्धि-तत्त्व, अशौच, पातक, महापातक, कर्म-विपाक, प्रायश्चित्त, पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष), भक्ति और अध्यात्मज्ञान आदि अन्यान्य विषय समाहित हैं। अस्तु!

वेदोंमें जो विषय प्रतिपादित हैं, वे मानवमात्रका मार्गदर्शन करते हैं। मनुष्यको प्रतिक्षण कब क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये, साथ ही प्रातःकाल जागरणसे रात्रिपर्यन्त सम्पूर्ण चर्या और क्रिया-कलाप ही वेदोंके प्रतिपाद्य विषय हैं। —सम्पादक]

वैदिक संस्कृति और सदाचार

(डॉ० श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम', डी० लिट्०)

वैदिक संस्कृति सदाचारको जितना महत्त्व प्रदान करती है, उतना अन्य उपादानोंको नहीं। आप चाहे अद्वैतको मानिये और चाहे द्वैतको, यदि आप सदाचारी नहीं हैं तो आपकी मान्यता निरर्थक है—बालूमेंसे तेल निकालनेके समान है। यदि आप सदाचारी हैं तो ईश्वरमें विश्वास या अविश्वासका प्रश्न उठेगा ही नहीं और यदि आप सदाचारी नहीं हैं तो वेदके शब्दोंमें '**ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः**'—'दुराचारी सत्यके मार्गको पार कर ही नहीं सकते'—इसपर आपको ध्यान देना होगा। सदाचारी व्यक्ति ही सत्य-पथका अनुगामी है और जो सत्य-पथपर चल रहा है, वह एक दिन उसे पार कर ही जायगा—प्रभुको प्राप्त कर ही लेगा; क्योंकि '**ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्ति**'—तात्पर्य यह कि ऋतके आदेश—सदाचारके संकेत प्रभुका संवर्धन करनेवाले हैं। '**स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः**' अर्थात् स्वर्ग या ज्योतिकी ओर ले जानेवाला देवयान-पथ सुकृती, सदाचारी व्यक्तिके ही भाग्यकी वस्तु है। इस प्रकार सदाचारी सत्पथका पथिक जाने या अनजाने उस परमगति—परमतत्त्वकी ओर अपने-आप चला जा रहा है। वेदमें प्रार्थना आती है—**परि माऽग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज। उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ अनु॥** (यजु० ४। २८)

'सर्वाग्रणी देव! आप सबके नियन्ता हैं। मुझे दुश्चरितसे पृथक् करें और सब ओरसे सदाचारका भागी बनायें। मैं अमर देवोंका अनुकरण करूँ तथा उत्तम आयु एवं शोभन जीवन लेकर ऊपर उठ जाऊँ।' सदाचार ही ऊपर उठाता है। दुराचार तो गिरानेवाला है, आयुको क्षीण करनेवाला है, रोगोंका अड्डा बनानेवाला है। सदाचारसे नीरोगता प्राप्त होती है, आयु बढ़ती है और प्राणी ऊपर उठता है। मानव यहाँ ऊँचा उठनेके लिये आया है, गिरनेके लिये नहीं। अतः जो गिराता है, उसे ही हमें गिरा देना चाहिये और जो उठाता है, उसे अपना लेना चाहिये। इसीमें कल्याण है। वेद सदाचारके लिये मनको शिवसंकल्पमय बनानेकी आज्ञा देते हैं—'**तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।**' मनमें शिवसंकल्प

उठेंगे तो वे आचरणमें भी फलीभूत होंगे; क्योंकि '**यन्मनसा मनुते तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति**'—का सिद्धान्त सर्वांशतः सत्य है। इस मनको सामग्री प्राप्त होती है ज्ञानेन्द्रियोंसे। वेद कहते हैं—'**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।**' अर्थात् 'हम कानोंसे भद्र शब्दोंको सुनें और आँखोंसे भद्रका ही दर्शन करें।' शिवसंकल्पी मन आँखोंसे भद्रका दर्शन करेगा और भद्रदर्शी ही शिवसंकल्पी बनेगा। दोनोंमें अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। जो बात आँख और कानके सम्बन्धमें कही जाती है, वही अन्य ज्ञानेन्द्रियोंके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। इस प्रकारका शिवसंकल्पी मन भद्रदर्शी और भद्रश्रोत्रीके साथ भद्र आचरण ही करेगा। उसके अङ्ग स्थिर होंगे, शरीर देवोंद्वारा स्थापित पूर्ण आयुको प्राप्त करेगा और वह भद्रका आशंसी बनेगा।

स्वस्तिपथ सदाचारका पथ है। यह दानी, अहिंसक और ज्ञानियोंका पथ है। हमें सदाचारकी शिक्षाके लिये उन्हींके सत्संगमें रहना चाहिये। '**अग्ने नय सुपथा**'—'प्रभु हमें इसी सुपथसे ले चलें।' '**युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः**'—'कुटिलताके पापपथसे हमें दूर रखें।' '**सुगः कर्त सुपथा स्वस्तये**'—'सुपथको प्रभु हमारे लिये सुगम कर दें, जिससे हम कल्याणके भाजन बन सकें।' यदि '**न नः पश्चात् अघं नशत्**'—'पाप हमारे पीछे न पड़ा' तो '**भद्रं भवाति नः पुरः**'—'भद्र निश्चितरूपसे हमारे सामने आ जायगा।' हम प्रतिदिन प्रभुसे प्रार्थना करते हैं—'**विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव**'—'प्रभो! हमारे दुरित, दुराचार दूर हों और जो भद्र हैं, मङ्गलमय या कल्याणकारी हैं, वे ही हमें प्राप्त हों।' दुरित, दुराचार या कुत्सित आचरण हमारे विनाशका कारण है। सदाचार हमें प्रतिष्ठित करता है, जीवन देता है। '**स नः पूषाऽविना भुवत्**'—अर्थात् 'सदाचार हमें पोषण देता है और हमारी रक्षा करता है।'

सदाचारमें सत् है, श्रद्धामें श्रत् है। सत् और श्रत् प्रायः एक ही हैं। यही धारण करनेवाले धर्म भी हैं। ऐसे धर्मोंका अध्यक्ष—'**अध्यक्षं धर्माणाम्**'—'अग्नि है, सर्वाग्रणी परमेश्वर है।' वही सत् और श्रत्का निधान है। उसीकी प्राप्ति धर्मकी प्राप्ति है, सत् और श्रत्की उपलब्धि है। इस प्रकार परमेश्वर, सत्य और धर्म एक ही हैं।

'**त्रिशूला न क्रिलयः सुमातरो.....**'—'माताओंके आगे जैसे शिशु क्रीडा करते हैं, वैसे ही हमें भी प्रभुके आगे शिशुकी भाँति क्रीडा करनी चाहिये।' शिशु निरीह और निष्पाप होता है। वह दुराचारका नाम भी नहीं जानता। सदाचार सहजरूपसे उसके अंदर निवास करता है। यदि हम भी शैशव वृत्ति धारण कर लें, बड़े होकर भी शिशुकी भाँति निष्कपट व्यवहार करें तो हम प्रभुके सांनिध्य या सामीप्यमें रहेंगे, सत् हमारा साथी बनेगा, भद्र हमारे पार्श्वमें बसेगा और आनन्द रोम-रोममें रमेगा। सदाचाररूपी वृक्षपर आनन्दका ही फल लगता है।

सदाचार-पथके पथिकको कभी प्रमादमें नहीं पड़ना है और न व्यर्थके प्रलापमें भाग लेना है। '**मा नः निडा ईशत मोत जल्पिः**'—'निद्रा या जल्पना कोई भी हमारे ऊपर शासन न कर सके।' '**इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति**'—क्योंकि 'जो निद्रालु है, सोता है, देव उसकी कामना नहीं करते।' दिव्य गुण या सदाचार उससे कोसों दूर भाग जाते हैं। देव तो उसीसे प्रेम करते हैं जो सदाचारी है, सहनशील है, त्यागपरायण है। सदाचारके क्षेत्रमें इसीलिये कोई छुट्टी नहीं है, अवकाशका दिन नहीं है—There is no holiday in moral life—इसमें एक दिन क्या, एक क्षणके लिये भी छुट्टी मनाना, सदाचारसे पृथक् होना—वर्षोंकी कमाईपर पानी फेर देना है। एक पलका भी प्रमाद अनन्तकालतकके पश्चात्तापका कारण हो सकता है।

'**कृधी न ऊध्वत्रि चरथाय जीवसे**'—'हम अपने जीवनमें, अपने आचरणमें ऊँचे ही उठते रहें।' हमारा वर्तमान जीवन और उसकी कार्यप्रणाली एक लम्बी शृंखलाकी कड़ीमात्र है। न जाने कबसे प्रयत्न करते-करते हम वर्तमान अवस्थाको प्राप्त हुए हैं। कितनी ठोकरें खायी होंगी, कितने नीचे गिरे होंगे और फिर उठनेमें कितना प्रयास किया होगा। यदि विगतकी यह स्मृति जाग उठे तो हम प्राप्त क्षणोंको अपने हाथसे कभी न जाने दें। ऊँची चढ़ाई कष्टसाध्य होती है, परंतु जब ऊपर चढ़कर आनन्दका आस्वाद लेते हैं, उन्मुक्त वातावरणमें साँस लेते हैं तो झेले हुए कष्ट फिर कष्ट नहीं रहते, आनन्दावसायी परिणतिमें डूबकर समस्त आयास समाप्त हो जाते हैं। अशिव और अमीव (कष्ट) पीछे छूट जाते हैं। शिव और स्वास्थ्य समक्ष ही नवल लास्य—नर्तन करने लगते हैं। जो वैषम्य पल-पलमें काटनेको दौड़ता था, वह स्वयं कट जाता है और उसके स्थानपर शोभित हो जाता है—सामरस्य, जो सर्वोच्च कोटिकी उपलब्धि है।

ऊर्ध्व स्थितिमें पर्वती उतार-चढ़ाव भी दिखायी नहीं देते। एक सुन्दर समतल प्रदेश—आँगनके समान दृष्टिगोचर

होने लगता है। '**अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिद् ऋष्वा**'—'मुक्त जीवके लिये उच्च, विशाल, पार्वत्य तुङ्ग-शृङ्ग अजिर-तुल्य हैं' और '**गम्भीरे चिद् भवति गाधमस्मै**'—'गहरे-से-गहरे निराशाजनक स्थलोंमें भी उसके लिये आशाजनक पोत विद्यमान है।'

ऊपर हमने ऋतको सदाचार कहा है। अंग्रेजीमें ऋतका स्थानीय 'Right' है। वेदमें ऋत और सत्यका युग है। ऋतका सम्बन्ध चर और चित्‌से है, सत्‌का सम्बन्ध अचर तथा अचित्‌से है। इस आधारपर सत्य वे नियम हैं, जो विश्वकी सतात्मक (Static) स्थितिसे सम्बन्ध रखते हैं और ऋत वे नियम हैं, जो उसकी गत्यात्मक तथा क्रियात्मक स्थितिसे सम्बन्ध रखते हैं। यही दो नियम विश्वभरकी चराचर जड़-जंगम अथवा चित्-अचित् स्थितियोंका नियन्त्रण करते हैं। एम्रुएल काण्ट कहा करता था—'Two things fill my mind with awe and reverance; the theory heavence above and the moral love within.'—'तारोंभरे आकाशसे उसका लक्ष्य ब्रह्माण्डीय नियमोंकी ओर था, जिन्हें हमने सत्य कहा है।' मौरेल लॉ या सदाचारके नियमको हम सत्य न कहकर ऋत कहेंगे। वैदिक संस्कृतिमें ऋत या सदाचारका नियम महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि संस्कृतिरूपी भवन इसीकी नींवपर खड़ा होता है। वेदमें ऋतकी प्रशंसा अनेक मन्त्रोंमें की गयी है। ऋतकी जड़ें बड़ी गहरी हैं। द्यौ-पुत्र ऋतके ही प्रशंसक हैं। आङ्गिरस प्राणप्रधान व्यक्ति ऋतके द्वारा ही 'विप्र' पदको प्राप्त करते हैं। विप्रकी वाणी ऋतसे ओतप्रोत रहती है। देव ऋतसे सम्पन्न, ऋत-जात तथा ऋतके बढ़ानेवाले होते हैं। ऋतद्वारा ही वे मानवको पापसे छुड़ाते हैं। वे स्वयं ऋतसे द्युम्न या चमकीले बनते हैं। ऋतकी प्रथमजा प्रज्ञाका आश्रय लेकर वे सर्वज्ञ बन जाते हैं। देवोंमें वही देव पवित्र सामर्थ्यवान् तथा यज्ञिय बनते हैं जो ऋतसे अपनेको संयुक्त करते हैं। सदाचार ऋतके इसी नियमपर आधारित हैं। वैदिक संस्कृतिकी आधारशिला भी यही है। ऋत या सदाचारसे विहीन मानवको संस्कृत मानव किसीने कहीं भी नहीं कहा। हमें संस्कृत बनना है तो सदाचारको जीवनमें प्रमुख स्थान देना ही पड़ेगा। ऋतके नियमोंके आधारपर सच्चरित्र बनना होगा। यही जीवनका चरम लक्ष्य-पथ है।

सम-वितरण

विभज्य भुञ्जते सन्तो भक्ष्यं प्राप्य सहाग्निना। चतुरश्चमसान् कृत्वा तं सोममृभवः पपुः॥ (नीतिमञ्जरी)

सुधन्वाके पुत्र ऋभु, विभु और वाज त्वष्टाके विशेष कृपापात्र थे। त्वष्टाने उन्हें अपनी समस्त विद्याओंसे सम्पन्न कर दिया। उनके सत्कर्मकी चर्चा देवोंमें प्रायः होती रहती थी। उन्होंने बृहस्पतिको अमृत तथा अश्विनीकुमारोंको दिव्य रथ और इन्द्रको वाहनसे संतुष्ट कर उनकी प्रसन्नता प्राप्त की थी। वेदमन्त्रोंसे वे देवोंका समय-समयपर आवाहन करते रहते थे। देवोंको सोमका भाग देकर वे अपने सत्कर्मसे देवत्वकी ओर बढ़ रहे थे।

× × ×

ऋभुओंने त्वष्टानिर्मित सोमपानका आयोजन किया। सामवेदके सरस मन्त्रोच्चारणसे उन्होंने सोमाभिषव प्रारम्भ कर उसे चमसमें* रखा ही था कि सहसा उन्हींके आकार-प्रकार, रूप-रंग और वयस्‌के एक प्राणी दीख पड़े। ऋभुओंको बड़ा आश्चर्य हुआ।

'चमसके चार भाग करने चाहिये।' ज्येष्ठ पुत्र ऋभुने आदेश दिया। उनकी आज्ञाका तत्क्षण पालन हुआ विभु और वाजके द्वारा।

'अतिथिका सत्कार करना हमारा परम धर्म है, आप कोई भी हों, हम लोगोंने आपको सम भागका अधिकारी माना है।' ऋभुओंने सोमपानके लिये अज्ञात पुरुषसे प्रार्थना की।

'देवगण आपसे प्रसन्न हैं, ऋभुओ! मुझे इन्द्रने आपकी परीक्षाके लिये भेजा था। आप लोग संत हैं। आपने अतिथि-धर्मका पालन करके अपना गोत्र पवित्र कर लिया।' अग्नि प्रकट हो गये। उन्होंने सोमका चौथा भाग ग्रहण किया। इन्द्रने भी सोमका भाग प्राप्त किया। प्रजापतिने उन्हें अमरता प्रदान की। वे अपने शुभकर्मसे देवता हो गये।

[बृहद्देवता ३। ८३—९०]

* सोमरस धारण करनेवाले काष्ठपात्र-विशेषका नाम चमस है।